[2014] 4 एस. सी. आर 602

बिहार राज्य और अन्य

बनाम

राजमंगल राम

(2014 की आपराधिक अपील संख्या 708)

31 मार्च, 2014

[पी. सतशिवम, सीजेआई और रंजन गोगोई, न्यायाधीशगण]

आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973:

धारा 465 आरएलडब्ल्यू धारा 197 दंड प्रक्रिया संहित और 19 (3) दंड प्रक्रिया संहित अधिनियम की धारा 19 (1)-अभियोजन के लिए मंजूरी देने वाले आदेश में दोषों/चूक/त्रुटियों के आधार पर आपराधिक अभियोजन में हस्तक्षेप-अदालत ने कहा धारा दोनों धारा465, दंड प्रकिया संहिता और भारतीय दंड विधान पी.सी. अधिनियम की धारा 19 (3) यह स्पष्ट करती है कि मंजूरी देने में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता किसी सक्षम अदालत द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को तब तक प्रभावित नहीं करेगी जब तक कि न्यायालय, न्याय की विफलता का अवसर दिया गया है-इस मामले में, यह मानते हुए भी कि विधि विभाग मंजूरी देने में सक्षम नहीं था, उच्च न्यायालय के लिए अभी भी इस निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक था कि न्याय की विफलता हुई थी-इस तरह का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है-प्रतिवादियों के आपराधिक अभियोजन में हस्तक्षेप करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश को दरकिनार कर दिया गया है-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988-धारा 19 (3) सहपठित धारा 19 (1)।

यह अपील राज्य द्वारा दायर की गई थी सरकार ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित दो आदेशों के विरुद्ध यह अभिनिर्धारित करते हुए कि राज्य का विधि विभाग दंड संहिता, 1860 के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत प्रतिवादियों के अभियोजन के लिए

मंजूरी देने में सक्षम नहीं था, परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थियों के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करना।

न्यायालय के समक्ष विचार के लिए प्रश्न यह थाः क्या आपराधिक अभियोजन होना चाहिए एक अभियुक्त के कहने पर उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया गया, जिसने ऐसी मंजूरी देने के लिए अधिकार क्षेत्र की त्रुटियों सहित मुकदमा चलाने की मंजूरी देने वाले आदेश में दोषों/चूक या त्रुटियों के आधार पर उसके खिलाफ लगाए गए आपराधिक आरोपों से बीच में राहत मांगी थी।

अपीलों को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने कहा

1.1 लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी देने की आवश्यकता के पीछे के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, इस संबंध में प्रावधान या तो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत एक रोक के रूप में तैयार किए गए हैं। कर्तव्य के उचित निर्वहन से उत्पन्न होने वाले कार्यों के लिए एक ईमानदार लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के तुच्छ, शरारती और बेईमान प्रयास और उसे सक्षम बनाने के लिए अपने पद के आधार पर उन पर डाले गए कर्तव्यों की विस्तृत श्रृंखला को कुशलता से पूरा करें।इसलिए, परीक्षण हमेशा यह होता है कि क्या जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह उचित है। सरकार या लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के संबंध में।यदि ऐसा संबंध मौजूद है और सरकारी कार्य का निर्वहन या अभ्यास, प्रथम दृष्टया, वास्तविक आधार पर है लोक सेवक के निर्णय पर, मंजूरी की आवश्यकता पर जोर दिया जाएगा ताकि लोक सेवक के खिलाफ किसी भी प्रेरित, निराधार और तुच्छ अभियोजन को रोकने के लिए एक फिल्टर के रूप में कार्य किया जा सके।हालांकि, यह महसूस करते हुए कि आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में एक अधिनियम और एक अधिनियम के बीच विभाजन रेखा जो कभी-कभी धुंधली हो सकती है, जिससे लोक सेवक की ओर से भी कुछ अनुचित दावे किए जा सकते हैं ताकि मंजूरी की आवश्यकता का अनुचित लाभ प्राप्त किया जा सके, इनके लिए धाराओं में विशिष्ट प्रावधान शामिल किए गए

हैं। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (3) के साथ-साथ धारा.दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465, जो अन्य बातों के साथ-साथ यह स्पष्ट करती है कि मंजूरी देने में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता किसी सक्षम अदालत द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को तब तक प्रभावित नहीं करेगी जब तक कि अदालत की राय में न्याय की विफलता नहीं हुई हो।इस तरह संतुलन बनाने की कोशिश की जाती है। [पैरा 5] [607-बी-एच]

1.2 ऐसी स्थिति में जब दोनों अधिनियमों के तहत मंजूरी में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता, जिसमें मंजूरी देने के लिए प्राधिकरण की क्षमता भी शामिल होगी, दोषसिद्धि और सजा सहित मुकदमे में अंतिम निष्कर्ष को दूषित नहीं करती है, जब तक कि निश्चित रूप से न्याय की विफलता नहीं हुई है। मध्यस्थ स्तर पर एक आपराधिक अभियोजन को मंजूरी आदेश में ऐसी किसी भी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के कारण रद्द या बाधित नहीं किया जा सकता है। इस संतोष पर पहुँचते हुए कि न्याय की विफलता भी हुई है। [पैरा 7] [610-एफ-जी]

मध्य प्रदेश राज्य बनाम विरेन्द्र कुमार त्रिपाठी **2009 (7) एस. सी. आर. 89 = (2009) 15 एस. सी. सी. 533;** पुलिस निरीक्षक बनाम टी. वेंकटेश मूर्ति **2004 (4) सप्लीमेंट।एस. सी. आर. 279 (2004) 7 एस. सी. सी. 763;** प्रकाश सिंह बादल और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य **2006 (10) पूरक एससीआर 197 (2007) 1 एस. सी. सी. 1;** और आर. वेंकटकृष्णन बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो **2009 (12) एस. सी. आर. 762 (2009) 11 एस. सी. सी. 737-पर भरोसा किया।**

गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस **2005 (3) पूरक।एस. सी. आर. 712 = (2005) 8 130-विशिष्ट।**

1.3 इस मामलों में, उच्च न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर बाधित किया कि विधि विभाग प्रत्यर्थियों के अभियोजन के लिए मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं था।यहाँ तक कि यह मानते हुए भी कि विधि विभाग नहीं था सक्षम होने पर, उच्च न्यायालय के लिए अभी भी इस निष्कर्ष पर पहुंचना आवश्यक था कि न्याय की विफलता हुई

है।इस तरह की खोज स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेशों को कानून में कायम नहीं रखा जा सकता है और इस तरह, उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है। [पैरा 10 और 12] [612-सी-डी, जी]

वाद कानून संदर्भः

2006 (10) पूरक एससीआर 197	**भरोसा किया**	**पैरा 7**
2004 (4) पूरक।एससीआर 279	**भरोसा किया**	**पैरा 8**
2009 (12) एससीआर 762	**भरोसा किया**	**पैरा 8**
2009 (7) एससीआर 89	**भरोसा किया**	**पैरा 8**
2005 (3) पूरक एस.सी.आर. 712	**विशिष्ट**	**पैरा 9**

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः 2014 की आपराधिक अपील सं. 708।

2011 के सी.आर.एल.डब्ल्यू. संख्या 487 में पटना उच्च न्यायालय के दिनांकित 23.03.2012 के निर्णय और आदेश से।

के साथ

2014 की आपराधिक अपील संख्या 709-710।

रंजीत कुमार, एच. पी. रावल, राजीव दत्ता, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, अरुणाभ चौधरी, आशीष झा, गैनिलुंग पनमेई, उपस्थित दलों के लिए कर्मा दोरजी, जयंत मोहन, अजीत कुमार, अविनाश कुमार, दीपाली द्विवेदी, सिद्धार्थ दत्ता, दुष्यंत कुमार।

न्यायालय का निर्णय रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति द्वारा दिया गया

1. अनुमति, दोनों मामलों में मंजूर की जाती है।

2. 2 पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित अलग-अलग आदेशों (दिनांक 23.03.2012 और 03.03.2011) के विरुद्ध बिहार राज्य द्वारा दो अपीलें हैं, जिसका प्रभाव यह है कि

भारतीय दंड संहिता के विभिन्न उपबंधों के साथ-साथ प्रत्यर्थियों के विरुद्ध संस्थित आपराधिक कार्यवाही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 को इस आधार पर बाधित किया गया है कि दोनों मामलों में प्रत्यर्थियों के अभियोजन के लिए मंजूरी राज्य के विधि विभाग द्वारा दी गई है, न कि मूल विभाग द्वारा जिससे प्रत्यर्थी संबंधित हैं।

3. विचाराधीन अपीलों में एक छोटा और रोचक प्रश्न, जो काफी सार्वजनिक महत्व का भी है, उत्पन्न हुआ है। आगे बढ़ने से पहले इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक होगा कि 2012 की विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) सं. 8013 से उत्पन्न अपील में प्रत्यर्थी-रिट याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष उसके खिलाफ पंजीकृत आपराधिक कार्यवाही की संधारणीयता की चुनौती सूक्ष्म रूप से तैयार की गई है.इस प्रकार, आपराधिक कार्यवाही को रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई थी और यह केवल मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी देने वाला आदेश है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित और हस्तक्षेप किया गया था.परिणामी प्रभाव, निश्चित रूप से, यह है कि दांडिक कार्यवाही बाधित हुई। दूसरे मामले (विशेष अनुमति याचिका (अपराधिक) सं. 159-160/2013) में आपराधिक मामले की संधारणीयता विनिर्दि-टतः उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दे सकता है कि मंजूरी देने वाला आदेश कानून में अमान्य है.उच्च न्यायालय के समक्ष संस्थित कार्यवाहियों में दृष्टिकोणों में उपरोक्त मतभेदों के होते हुए भी, वर्तमान अपीलों में संवीक्षा उसी दृष्टिकोण से होनी चाहिए, अर्थात् अभियोजन के लिए मंजूरी के आदेश की वैधता या अन्यथा के आधार पर किसी आपराधिक कार्यवाही को बीच में रोकने के लिए न्यायालय की शक्ति का दायरा।

4. यद्यपि दोनों पक्षों के विद्वत अधिवक्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती के समर्थन में किए गए अभिवचनों, संबंधित मंजूरी आदेशों के साथ-साथ कार्यकारी कार्य नियमों के सुसंगत प्रावधानों सहित प्रत्यर्थियों के खिलाफ दर्ज आपराधिक शिकायतों सहित रिकॉर्ड पर सामग्री के माध्यम से हमें विस्तृत रूप से लिया है, हम कानून के उत्पन्न होने वाले संक्षिप्त

प्रश्न को ध्यान में रखते हुए कथित तथ्यों को पार करना आवश्यक नहीं समझते हैं, जिसे निम्नलिखित रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता हैः.

> "क्या उच्च न्यायालयों द्वारा किसी ऐसे अभियुक्त के अनुरोध पर, जो किसी दांडिक अभियोजन में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए, जो इस तरह की मंजूरी देने के लिए क्षेत्राधिकार की गलतियों सहित अभियोजन की मंजूरी देने के आदेश में खामियों/चूक या त्रुटियों के आधार पर उसके खिलाफ लगाए गए आपराधिक आरोप?"

5. किसी लोक सेवक के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता के पीछे उद्देश्य को न्यायालय को रोके रखने की आवश्यकता नहीं है और यह दोहराने के अलावा कि इस संबंध में या तो दंड प्रक्रिया संहिता या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत उपबंध कर्तव्य के उचित निर्वहन से उत्पन्न कार्यों के लिए एक ईमानदार लोक सेवक को अभियोजित करने के निरर्थक, शरारतपूर्ण और अनैतिक प्रयासों पर रोक लगाने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं और उसे अपने पद के आधार पर उसे सौंपे गए कर्तव्यों की विस्तृत श्रृंखला को कुशलतापूर्वक पूरा करने में सक्षम बनाने के लिए भी है। इसलिए कसौटी यह है कि क्या शिकायत की गई कार्रवाई का सरकार या लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन से उचित संबंध है। यदि ऐसा संबंध विद्यमान है और सरकारी कृत्य का निर्वहन या प्रयोग प्रथम दृष्टया लोक सेवक के वास्तविक निर्णय पर आधारित है, तो मंजूरी की आवश्यकता पर बल दिया जाएगा ताकि लोक सेवक के खिलाफ किसी भी प्रेरित, आधारहीन और तुच्छ अभियोजन को दूर रखने के लिए एक फिल्टर। हालांकि, यह महसूस करते हुए कि आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किसी कार्य और एक कार्य जो नहीं है, के बीच विभाजन रेखा कभी-कभी धुंधली हो सकती है, जिससे लोक सेवक की ओर से कुछ अनुचित दावे किए जा सकते हैं ताकि मंजूरी की आवश्यकता का अनुचित लाभ उठाया जा सके, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (3) के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 में विशिष्ट प्रावधान शामिल किए गए हैं, जो अन्य बातों के साथ-साथ यह स्पष्ट करते हैं कि मंजूरी देने में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता सक्षम न्यायालय द्वारा पारित

किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को प्रभावित नहीं करेगी जब तक कि अदालत की राय में न्याय की विफलता न हुई हो। इस तरह संतुलन बनाने की कोशिश की जा रही है।

6. स्पष्टता के लिए यह आवश्यक समझा जाता है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 के उपबंधों को वर्तमान आदेश में समाविष्ट किया जाना चाहिएः

<u>पीसी अधिनियम की धारा 19</u>

"19. पूर्व मंजूरी अभियोजन के लिए आवश्यक-(1) कोई भी न्यायालय धारा 7,10,11,13 और 15 के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, जो किसी लोक सेवक द्वारा किए जाने के लिए अभिकथित है, सिवाय पूर्व मंजूरी के

(क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकलापों के संबंध में नियोजित है और केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना अपने पद से हटाए जाने योग्य नहीं है,

(ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित है और राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना अपने पद से हटाए जाने योग्य नहीं है,

(ग) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में, उसे उसके पद से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी का.

(2) जहां किसी कारण से इस बारे में कोई संदेह उत्पन्न होता है कि उपधारा (1) के अधीन यथाअपेक्षित पूर्व मंजूरी केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए या नहीं, वहां ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकारी द्वारा दी जाएगी जो उस समय लोक सेवक को उसके पद से हटाने के लिए सक्षम होती जब अपराध किया गया था।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, -

(क) किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित मंजूरी की अनुपस्थिति या उसमें किसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के आधार पर अपील, पुष्टिकरण या पुनरीक्षण में किसी न्यायालय द्वारा तब तक उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा जब तक कि उस न्यायालय की राय में उसके द्वारा वास्तव में न्याय की असफलता न हुई हो।

(ख) कोई न्यायालय प्राधिकारी द्वारा दी गई मंजूरी में किसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर तब तक रोक नहीं लगाएगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है।

(ग) कोई न्यायालय किसी अन्य आधार पर इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों पर रोक नहीं लगाएगा और कोई न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाहियों में पारित किसी अंतवर्ती आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन यह अवधारित करने में कि क्या ऐसी मंजूरी की अनुपस्थिति या उसमें कोई त्रुटियां, लोप या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है या नहीं, न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आपत्ति कार्यवाहियों के किसी प्रारंभिक प्रक्रम पर उठाई जा सकती थी और होनी चाहिए थी।

व्याख्या - इस धारा के प्रयोजनों के लिए,-

(क) त्रुटियां में मंजूरी देने के लिए प्राधिकरण की योग्यता शामिल है

(ख) अभियोजन के लिए अपेक्षित मंजूरी में ऐसी किसी अपेक्षा के प्रति निर्देश शामिल है कि अभियोजन किसी विनिर्दिष्ट प्राधिकारी की प्रेरणा पर या किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति की मंजूरी से या समरूप प्रकृति की किसी अपेक्षा से किया जाएगा।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465

"**465. त्रुटियां, चूक या अनियमितता के कारण प्रतिवर्ती होने पर पता लगाना या सजा लगाना।** -(1) इसमें इसके पूर्व अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित किसी निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश को अपील न्यायालय द्वारा शिकायत, समन, वारंट, उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या अन्य कार्यवाहियों में किसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता या इस संहिता के अधीन किसी जांच या अन्य कार्यवाहियों में या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में किसी त्रुटियां या अनियमितता के कारण तब तक उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा जब तक कि उस न्यायालय की राय में न्याय की विफलता वास्तव में उसके कारण न हुई हो।

(2) यह अवधारित करने में कि क्या इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में कोई त्रुटियां या अनियमितता न्याय की विफलता का कारण बनी है, न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में उठाई जा सकती थी और होनी चाहिए थी। .

(जोर हमारा है)

7. ऐसी स्थिति में जहां दोनों अधिनियमों के अधीन मंजूरी में कोई त्रुटियां, चूक या अनियमितता, जिसमें मंजूरी देने के लिए प्राधिकारी की क्षमता भी शामिल होगी, दोषसिद्धि और दंडादेश सहित विचारण के अंतिम निष्कर्ष को तब तक दूषित नहीं करती है जब तक कि न्याय की विफलता हुई है, यह देखना मुश्किल है कि मध्यवर्ती स्तर पर किसी आपराधिक अभियोजन को इस संतुष्टि पर पहुंचे बिना कि न्याय की विफलता भी हुई है, मंजूरी आदेश में ऐसी किसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के कारण कैसे रद्द या बाधित किया जा सकता है। पुलिस द्वारा राज्य में इस न्यायालय द्वारा यह निर्णय इंस्पेक्टर निरीक्षक बनाम टी. वेंकटेश मूर्ति[1] में लिया गया था

इंस्पेक्टर बनाम टी. वेंकटेश मूर्ति में

अन्य बातों के साथ-साथ यह पाया गया किः-

> "14. केवल इसलिए कि मंजूरी के मामले में कोई चूक, त्रुटियां या अनियमितता है, जो कार्यवाही की वैधता को प्रभावित नहीं करती है जब तक कि न्यायालय इस संतुष्टि को दर्ज नहीं करता है कि ऐसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है।"

8. उपरोक्त दृष्टिकोण को प्रकाश सिंह बादल और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य[2] में भी दोहराया गया प्रकाश सिंह बादल और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मंजूरी में मात्र चूक, त्रुटियां या अनियमितता को घातक नहीं माना जाना चाहिए जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हो। प्रकाश सिंह बादल (पूर्वोक्त) वाले मामले में आगे यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (1) प्रक्रिया का विषय है और यह धारा के मूल में नहीं जाती है। इसी तर्ज पर इस न्यायालय का निर्णय

आर. वेंकटकृष्णन बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो[3] में हैं। वास्तव में, मध्य प्रदेश राज्य में एक तीन न्यायाधीशों की पीठ बनाम वीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी[4], मामले पर विचार करते समय मूल विभाग के प्राधिकार के बजाय मध्य प्रदेश सरकार के विधि और विधायी मामलों के विभाग के अपर सचिव द्वारा मंजूरी की वैधता जैसे समान मुद्दे पर, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 (3) के मद्देनजर, मंजूरी आदेश की अविधिमान्यता के आधार पर किसी आपराधिक कार्यवाही को बीच में रोकना तब तक उचित नहीं होगा जब तक कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि मंजूरी में ऐसी किसी त्रुटियां, चूक या अनियमितता के कारण न्याय की विफलता हुई थी। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्याय की असफलता आरोप की विरचना के स्तर पर नहीं, बल्कि विचारण आरंभ

होने और साक्ष्य का नेतृत्व करने के पश्चात् ही स्थापित की जा सकती है (प्रतिवेदन का पैरा 10)।

9. गोवा राज्य बनाम बाबू थॉमस[5] वाले मामले में इस न्यायालय का विपरीत मत है कि मंजूरी देने में त्रुटियां अभियोजन की जड़ तक जाती है। लेकिन बाबू थॉमस (उपर्युक्त) के निर्णय को आवश्यक रूप से उसके तथ्यों में समझा जाना चाहिए, अर्थात्, प्राधिकारी ने स्वयं प्रारंभिक मंजूरी के आधार पर पहले से ही किए गए संज्ञान को मान्य करने के लिए पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ दूसरी मंजूरी जारी करके प्रारंभिक मंजूरी की अविधिमान्यता को स्वीकार किया था.अन्यथा भी, स्थिति को बड़ी पीठ द्वारा स्पष्ट किया गया है मध्य प्रदेश राज्य बनाम वीरेन्द्र कुमार त्रिपाठी (उपर्युक्त)।

10. तत्काल मामलों में उच्च न्यायालय ने इस आधार पर दांडिक कार्यवाहियों पर रोक लगा दी थी कि विधि विभाग प्रत्यर्थियों के अभियोजन के लिए मंजूरी देने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं है। यह मानते हुए कि विधि विभाग सक्षम नहीं है, फिर भी उच्च न्यायालय के लिए यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक था कि न्याय की विफलता हुई है। इस तरह की खोज स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेशों को बनाए रखना कठिन हो जाता है।

11. दोनों मामलों में उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि प्रश्नगत मंजूरी आदेश प्रासंगिक तथ्यों और अभिलेखों पर विचार किए बिना यांत्रिक रूप से पारित किए गए थे। इसे प्रत्यर्थियों के खिलाफ दर्ज आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए एक अतिरिक्त आधार के रूप में माना गया था.चुनौती के तहत आदेशों के प्रासंगिक भाग का अवलोकन करने के बाद हम नहीं सोचते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा कथित निष्कर्षों पर उस चरण में आने के लिए उचित था जब वे दर्ज किए गए थे.उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक अधिक उपयुक्त चरण केवल प्रश्नगत मुद्दों पर मामलों में साक्ष्य का नेतृत्व करने के बाद ही होता।

12 अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 23.03.2012 और 03.03.2011 को पारित आदेशों को विधि द्वारा बनाए नहीं रखा जा सकता। हम, इसलिए, दोनों अपीलों को उक्त आदेशों को रद्द करने की अनुमति देते हैं और निर्देश देते हैं कि निम्नलिखित के तहत अपीलों में प्रत्येक प्रत्यर्थी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की जाए। विचार अब शुरू होगा और जल्द से जल्द समाप्त किया जाएगा।

आर.पी. अपील स्वीकृत

खण्डन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।

1. (2004) 7 एससीसी 763 (पारा 10 और 11)
2. (2007) 1 एससीसी 1 (पारा 19)
3. (2009) 11 एससीसी 737
4. (2009) 15 एससीसी 533
5. (2005) 8 एससीसी 130